मनुष्य बनो

शरणागति

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ मार्च, १९८४

सुधा मितल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

R. S.

ओ३म पूर्णमदः पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ।।

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष ३३	श्रावण संवत २०४० वि०	अङ्क १०

माया-भ्रम

ठगनी आई ठगन संसार ।।टेक।।

रमा के रूप में विष्णु को लूटा, पारवती त्रिपुरार ।
गायत्री बन ब्रह्म ही घाला, माया चंचल नार ।।ठगनी०

भक्ति भाव लख भक्त लुभाने, ज्ञानी ज्ञान हंकार ।
योगी ऋधि सिधि नौ निधि भूले, माया महा बरियार ।।

ब्राह्मण बरन गोत्र कुल पाखंड, क्षत्री भुज बल भार ।
शूद्र मोह वैश्य धन दौलत, माया भेस अपार ।।

माया अगुन सगुन की मूरत, निराकार साकार ।
तीरथ बरत कर्म और धरमा, माया नरक विचार ।।

एक बचा सतगुरु का सेवक, टेक गुरु की धार ।
राधास्वामी बल ले भया बलवाना, माया को दिया पछार ।।

=×=

धन्यवाद

श्री ए० मेघराज, सिन्धी कालोनी, सिकन्द्राबाद (आ० प्रदेश) ने 'मनुष्य बनो' की सहायतार्थ १०१) रु० भेजा है। यह रकम हमें हजूर आनन्दराव श्री महाराज के मार्फत प्राप्त हुई। मनुष्य बनो कार्यालय इसके लिए आभारी है। कि पत्रिका की आर्थिक स्थिति खराब होने के समय आपने हमें यह अनुदान भेजा है। मालिक से हम आपकी सुख समृद्धि की कामना करते हैं।

—प्रकाशक

शब्द

सतसंग काज बनाई, साधु सतसंग काज बनाई ॥टेक॥
कहाँ चन्दन कहाँ रेंड बापुरो, बास सुबास सुहाई।
संगत का परताप महातम, चन्दन रेंड कहाई॥ साधु०
कहाँ गंगा कहाँ नद और नाले, मैलो नीर बहाई।
गंगा से मिल गंग भये दोऊ, सगत की अधिकाई॥
कहाँ सुदामा रंक भिखारी, कहाँ गोपाल कन्हाई।
उत्तम संग उत्तम बन आओ, संगत की प्रभुताई॥
काठ की नाव का बेड़ा बना है, बोझा लोह गड़ाई।
काठ के संग लोह तर जावे, देखा अचरज आई॥
कहाँ भालु कपि निश्चर पापी, कहाँ राम सुखदाई।
राम के संग राम गुन पाया, चहुं दिस कीरति छाई॥
कहाँ कीट निर्बल दुखियारा, कहाँ भृंगी समुदाई।
कीट भृंगी भया संगत के बल, महिमा बरनी न जाई॥
गुरु का संग करो निस वासर, गुरु के रंग रंगाई।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, अधम पतित तरजाई॥

—×—

गुरू पूजा क्या है ?

महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन, एम० ए०

प्रश्न—राधास्वामी मत की शिक्षा बहुत ऊँची है मगर इसमें मूर्ति पूजा क्यों कराई जाती है। क्या गुरु की पूजा मूर्ति पूजा नहीं है ? यदि यह वास्तव में अध्यात्मिक मार्ग है तो इसमें सिद्धान्त पर चलने की शिक्षा होनी चाहिए।

उत्तर—राधास्वामी मत में मूर्ति-पूजा नहीं कराई जाती और न गुरु भक्ति मूर्ति-पूजा है, किन्तु राधास्वामी मत का नाम ही सिद्धान्त की पूजा है, बशर्ते कि कोई व्यक्ति उसे अच्छी तरह समझ ले। गुरु भक्ति नाम है गुरु के साथ एक अङ्ग (एक भाव) होने तथा अनुकूल और एकता प्राप्त करने का। इसको तुम एक मानी में हमदर्दी (सहानुभूति) कह सकते हो। प्रथम तो यह समझ लो कि गुरु किसको कहते हैं ? जिसने सिद्धान्त की कमाई की हो अथवा वह मूर्तिमान जगत में साक्षात सिद्धान्त है, वह गुरु है। जो व्यक्ति जिस वस्तु की कमाई करता है वह वस्तु एड़ी से लेकर चोटी तक उसमें व्यापक रहती है। उसके भाव व वैसे ही होते हैं जैसाकि नियम है। उस सिद्धान्त के सार या इत्र को ग्रहण करने के लिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि कमाई करने वाला व्यक्ति कमाई किये हुये के साथ या साक्षात कमाई के साथ प्रेम और सहानुभूति करे। इस प्रेम और सहानुभूति का नाम गुरु भक्ति है। जब तक उसके साथ अनुकूलता, एकता और एकांगपना न होगा तब तक उसके भाव ज्यों के त्यों अन्तःकरण पर प्रभावित और प्रतिबिम्बित न होंगे और सिद्धान्त के ग्रहण करने का ज्यों का त्यों लाभ न होगा। इसलिये गुरुभक्ति अध्यात्म प्राप्त करने और आध्यात्म के नाम पर चढ़ने की प्रथम सीढ़ी है।

प्रश्न—सिवाय आपके और कोई व्यक्ति इस प्रकार गुरुभक्ति की व्याख्या नहीं करता। यह व्याख्या साइंटिफिक और चिकित्सा शास्त्र पर निर्धारित है मगर और जगह तो मत्था टेकने, हार चढ़ाने और प्रशादी

लेने पर ही जोर दिया जाता है जिसको प्रायः लोग पसंद नहीं करते।

उत्तर—साधारण बुद्धि वाले इसके अतिरिक्त और क्या समझ सकते हैं। वह सिवाय भौतिक पदार्थ की पूजा के और ख्याल भी क्या कर सकते हैं। मगर जिनका हृदय विस्तृत, बुद्धि सूक्ष्म और विचार उच्च हैं वह इन्हीं बातों को दूसरे रूप से कर सकते हैं। अभिप्रायः तो केवल मन लगाने और मन से गहरा सम्बन्ध उत्पन्न करने से हैं। ध्यान, संकल्प, एकाग्रता और केन्द्र से लगाव – यही काम देते हैं। वह यदि इनको पसन्द नहीं करते तो आदर के साथ प्रेम तो उत्पन्न कर सकते हैं ताकि गुरु की आकर्षण शक्ति और उनका आन्तरिक प्रभाव इनमें प्रवेश हो जाय। इसके बिना असली काम नहीं हो सकता। इसलिये गुरु की भक्ति पर इतना जोर दिया जाता है। तुम दुनिया में यदि किसी को कुछ दो, कुछ समझाओ, कुछ ग्रहण करो तो प्रेम और आदर के साथ करो, यहाँ तक कि यदि भोजन सामने आवे तो शुद्धता और प्रसन्नचित्त होकर उसे ग्रहण करो। यह भोजन का आदर और उसकी पूजा है। इसी प्रकार अन्य प्रकार की पूजाओं को भी समझ लो। मकान की पूजा उसको साफ सुथरा रखना और एक प्रसन्नता देने वाली दशा में उसको कायम रखना है।

सिद्धान्त की समझ प्रत्येक आदमी को नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति हर बात को अपनी ही बुद्धि के अनुसार समझता है। जो जैसा है वैसा ही अमल करेगा। तुमको केवल सिद्धान्त को समझ कर सिद्धान्त की पूजा के नुक्ते को समझ लेना चाहिये। वास्तविक ध्येय तो अनुकूलता एकता और प्रेम पैदा करना है और वही साहस को ऊँचा करने का प्रबन्ध करता है। तुम इस प्रकार गुरु के स्वरूप (जात) को स्वीकार करो और गुरु पूजा को दिल दो।

प्रश्न—आप जिस प्रकार हर विषय की व्याख्या करते हैं वैसा अन्य राधास्वामी सतसंगों में नहीं होता। वहाँ तो केवल पुस्तकों का पाठ कर छोड़ा या छोटे-मोटे एक-आध वचन सुना दिये जाते हैं। इसका क्या

कारण है ?

उत्तर—हमको परम पुरुष (हुजूर महाराज) ने विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शिक्षा दी है और यह भली प्रकार हृदयांगम कर दिया है कि राधास्वामी मत सर्वमत रक्षक है। इससे सब सम्प्रदायों के गूढ़ विषयों के हल करने की कुञ्जी हाथ आती है। इस कारण से हमारा ढंग औरों से भिन्न है। सूफी, वेदान्ती, बौद्ध, जैनी, ईसाई, मुसलमान अथवा हिन्दू कोई भी आवे हम किसी की ज़बान बन्द नहीं करते, न किसी का प्रश्न सुनकर नाराज होते हैं बल्कि उसी के दृष्टिकोण से उसको सार वस्तु और राधास्वामी मत की असलियत समझा देते हैं। जब गुरु ने विशेष दृष्टि प्रदान की तो हम उसी दृष्टि से सबको देखने के अभ्यस्त हो गये। हम किसी की जबान क्यों बन्द करें ? सवाल को यदि तुमने एक बार दबा दिया तो क्या हुआ, वह फिर बार-बार पैदा होगा। वह तो सदा के लिये उगने वाली वस्तु नहीं है। इसलिए सबको अवसर दो कि वह दिल खोलकर अपनी शंकाओं को निवारण करलें ताकि फिर सुगमता के साथ कमाई में लग जाँय। जबान किसी की भी बन्द न करो। यदि राधास्वामी मत सच्चा है तो फिर भय किस बात का है। जिसका जी चाहे वह अपनी शंकाओं का निवारण करले।

प्रश्न—आप नियमित रूप से सत्संग क्यों नहीं कराते और लोगों को अपनी ओर आकर्षित क्यों नहीं होने देते ताकि राधास्वामी मत का प्रचार और अधिक हो ?

उत्तर—आजकल राधास्वामी मत में गलत फहमियां फैल गई हैं। अन्य जगह भिन्नता या भेदभाव की बाढ़ आ गई हैं। काल की सृष्टि में ऐसा हुआ ही करता है। मैं केवल अपने लेखों से उनके दूर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। यह भी तो आवश्यक है। मैं व्यर्थ में क्यों अलग टोली बनाकर अधिक पृथकता बढ़ाऊँ। कुदरत ने हुजूर की मौज से यह काम मुझको दे रक्खा है और मैं उसी में लगा हुआ हूँ। मेरे लेख दूर-दूर के सत्संगियों को आध्यात्मिक सिद्धान्त समझाने में सहायक हो

रहे हैं और धीरे-धीरे गलत फहमियां (भ्रम मूलक बातें) दूर होती जा रही हैं। यह भी एक प्रकार का सत्संग का लाभ पहुँचा रहे हैं। "एक सिर और हजार सौदा" का ढंग ठीक नहीं है। काम तो हुजूर की मौज ही कर रही है। मैं सबका सम्मान करता हुआ केवल लेखों से ही सम्बन्ध रखता हूँ।

प्रश्न—आजकल प्रायः लोगों की जबान पर यह रहता है कि भक्ति सतगुरु वक्त की करनी चाहिए या पुराने आदि गुरु की ?

उत्तर – उनसे यह पूछना चाहिए कि प्रकाश जलते हुए चिराग से मिलता है या बुझे हुए या गुप्त चिराग से। गुरु तो अँधेरा दूर करने वाले व्यक्ति को कहते हैं और वह वास्तविक अर्थों में ज्ञान का प्रकाश है। जब चिराग प्रकाशित होता है तब ही पतंगे उस पर प्राण देने को चले आते हैं। जब गुलाब खिलता है तब भौंरे उसके इर्द गिर्द मंडलाने लगते हैं। ज्ञान के प्रेमियों के लिये वक्त के गुरु की आवश्यकता है।

प्रश्न—वक्त का गुरु एक हो या दस बीस ?

उत्तर—सिद्धान्त तो एक है। दृष्टि को एकत्वदर्शी बनाना है। इसी कारण से यदि आध्यात्मिक सम्बन्धों में बहुतायत होगी तो वह एकत्व के संस्कार पैदा कराने में कठिनाई पैदा करेंगे। जिसने एक का पल्ला पकड़ा वह दूसरों की ओर कम आकर्षित होगा। जिसने एक से अधिक से सम्बन्ध पैदा कर लिया वह सम्भव है तीसरे चौथे और पाँचवे की ओर भी झुके, पात्र में पूर्ण रूपेण एक वस्तु और एक वस्तु का ख्याल होना चाहिए। जहाँ दो चार, दस-बीस वस्तुयें होगी वहाँ भेद भाव की सूरत पैदा होने का भय लगा रहेगा। इसी कारण से बार-बार कहा जाता है कि पहले समझ बूझ लो, तब गुरु करो ताकि यह कठिनाई फिर रुकावट न डालने पावे।

प्रश्न—पंथ की दृष्टि से एक गुरु ने चोला बदल दिया। दूसरा उसके स्थान पर विराजमान हुआ। ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए ?

उत्तर—आचार्य की दृष्टि से उसका मान सम्मान करो। उसके

सतसंग से लाभ उठाओ। अगर आन्तरिक स्थान तय हो गये हैं तो ध्यान उसी गुरु का रहेगा जिसने चिताया है। दूसरे की दिल में गुंजाइश कब होगी।

प्रश्न—जिस व्यक्ति ने आचार्य पदवी को ग्रहण किया है उसके कुछ गुण वर्णन कीजिये।

उत्तर—(१) वहाँ यह देखना है कि आया वह अपने जीवन में गुरु मुख बना या नहीं। गुरु मुख वह है जो केवल एक ही गुरु से भान्वित हुआ है। यदि उसने कई गुरुओं से दीक्षा ली है तो उसमें गुरुमुखता नहीं आई और वह आचार्य पद के योग्य नहीं है। और उसके शिष्य और शिक्षार्थियों में भी ख्याली तौर पर हर समय परिवर्तन होते रहेंगे और उनमें कठिनाई से गुरुमुखता आयेगी।

(२) जो सच्चा आचार्य होगा वह किसी की निन्दा न करेगा और न दूसरों को बुरा भला कह कर अपनी भक्ति करने पर जोर देगा। यह रूहानी मार्ग है। इसमें निन्दा की आवश्यकता नहीं है।

(३) यह देखना चाहिए कि वह अपने चेलों की कमाई का अनुचित लाभ तो नहीं उठाता। यदि यह बात है तो दूर रहना अच्छा है। आचार्य में मन का संयम, हक हलाल की कमाई और नियमित रूप से अमली जीवन का होना अनिवार्य है ताकि उसका रूहानी प्रभाव औरों पर पड़े। जब वह घट का हाल सुनाने लगता है मन और सुरत स्वयं गगन मंडल की ओर दौड़ने लगती है।

(४) यह देखना चाहिए कि वह चेला बनाने के लालच और धुन में तो नहीं पड़ा है। दुकानदारी से ज्ञान मार्ग बड़ी दूर है। भिन्नता या भेद भाव पैदा करना महात्मा के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। यह एकत्वाद का विषय है। योग या मिलाप इसका ध्येय है।

(५) यह सम्बन्ध में असम्बन्धित और असम्बन्ध में सम्बन्धित रहता है और अध्यात्मिक सिद्धान्त का ज्ञाता और उन पर चलने वाला होता है।

प्रश्न—सतसंग एक का करना चाहिए या दस बीस का ?

उत्तर—यदि किसी एक की संगति से सत् का स्वरूप दिखाई दे गया है तो मनुष्य उसके संग को कब त्यागन करने लगा। यदि समय की परिस्थितियों के आधीन एक स्थान पर बने रहने की सूरत सम्भव न हो तो किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग में सम्मिलित होने में कभी कोई हानि नहीं है। अन्तःकरण के भावों को गति देने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक बात है। कोई सतपुरुष कभी किसी दशा में यह न कहेगा कि तुम पहले इष्ट को छोड़कर मेरा इष्ट हृदय में स्थापित करो। प्रत्युत सच्चे गुरु आदेश भी कर देते हैं कि तुम अमुक व्यक्ति की संगत में बैठ कर लाभ उठाओ।

प्रश्न—एक समय में एक संत सतगुरु होगा या कई कई ?

उत्तर—एक ही होगा। जिसने जिससे विश्वास के साथ शिक्षा पाई है वही उस समय का गुरु हो चुका। जिसको जिसके साथ प्रेम प्रीति हो वही उसका गुरु है।

प्रश्न—क्या अच्छा होता कि सबका एक ही गुरु और एक ही आचार्य होता ?

उत्तर—निस्संदेह ! इसके अच्छे होने में संशय किसको होता मगर दुनिया में स्वभावों में भिन्नता है। इस झगड़े में पड़ने के सिवाय आत्मिक हानि के और कोई लाभ नहीं है। काम से काम रक्खो। जब कोई शक्तिशाली संत प्रगट होगा तब स्वयं ऐसा हो जायगा। इस बीच की दशा में प्रथम सतसंगियों को अपने गुरु के ख्याल को पक्का करना चाहिए। जो नये सतसंगी होने वाले हैं उनको जहाँ अवसर मिले किसी सतपुरुष से आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करें। व्यर्थ के भ्रम में न पड़ें अन्यथा जीवन अकार्थ जायगा। किसी स्वार्थी के चक्र में फँसने से अध्यात्म से वंचित रह जायेंगे।

—×—

दोहे (उपदेश)

१. नर शरीर को पाय कर, कर नर का व्यवहार ।
समता चित में धार ले, सत् पथ में पग धार ॥

२. जो तू फूल गुलाब का, हँस मुखता धर चित ।
रंग वास दे जगत को, पर उपकार के हित ॥

३. जो तू वृक्ष समान है, सहकार धूप और मेह ।
पन्थी को छाया सघन[1], फूल पात फल देह ॥

४. जो तू गंग तरंग है, धो औरों का मैल ।
सीतलता[2] का दान दे, चलै जो तेरे गैल ॥

५. जो तू हंस सरूप है क्षीर नीर बिलगाय ।
त्याग नीर गह क्षीर को, हंस का यही स्वभाय[3] ॥

६. जो तू कमल का फूल है, रह जल जल उतराय ।
धन सम्पत कुल पाय कर, मत मन में इतराय ॥

७. जो तू गुरु का भक्त है, भक्ती में चित राख ।
ध्यान और त्याग कर, गह गुरु भक्ति की साख ॥

८. नन्दू पन्थ में आय कर, पाल प्रेम की रीति ।
नदी नाव संयोग लख, सब संग कर प्रीति ॥

९. जो तू सीप है स्वांति का, ज्ञान बूँद गह ले ।
मोती झलकै हृदय में, सोभा सागर दे ॥

१०. मलयागिर चन्द बना, बास सुवास से बास ।
काटै आवै कुल्हाड़ जो, मुख कर वास सुवास ॥

११. राधास्वामी आदि गुरु, आय चिताया तोह ।
उनकी समझ चितावनी, त्याग मान मद मोह ॥

— × —

गताँक से आगे

॥ सत सनातन धर्म अथवा मानव धर्म ॥

प्रवचन

यह गुरु की प्रणाली सनातन धर्म में है तो हमारे यहाँ संतों में यही है कि गुरुओं की आज्ञा में रहो। गुरु जो कहता है उसे मानो। बात एक ही है। अब किसी ने पुरोहित को गुरु मान लिया, किसी ने साधु को गुरु मान लिया। अब वह पुरोहित जो सावित्री का स्वयं साधन नहीं करते और गुरु बने हुए हैं, वह पापी है, क्योंकि उनकी राय जो वह देंगे, उससे दूसरों की हानि हो जायगी। जिस तरह एक डाक्टर है और स्वयं शरीर का प्रारम्भिक ज्ञान (Elementary knowledge) पूरी तरह नहीं रखता और अटकल पच्चू बिना उसूल के कोई बात किसी को कह देता है और वह बीमार मर जाता है तो वह पाप का भागी है। इस तरह गुरु, वह पण्डित, वह योगी जो स्वयं इस मार्ग का साधक नहीं है, वह अटकल पच्चू से किसी को राय दे देते हैं उनकी राय दूसरे के लिये हानि-कारक होती है। मैंने इसी ज्ञान के आधार पर सन १९४७ में, जब भारत का बटवारा हुआ, आवाज उठाई कि राजधानी दिल्ली से बदल दो, वरन तुम्हारी ७५ प्रतिशत शक्ति अमन (शान्ति) के लिये खर्च होती रहेगी और तुम भारत में शान्ति नहीं ला सकते।

अब २० वर्ष हुये। जो कुछ मैंने कहा वह ठीक निकला। जो महापुरुष इस सावित्री में रहते हैं जिनकी एक सावित्री तो यह गायत्री मन्त्र है :—

ओउम् भूर्भुवः स्वः तस्तवितुर्वरेण्यम

इसको कहते हैं त्रिकुटी। यह एक सावित्री है।

ओउम् भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम

तत सवितुर वरेण्यम

यह है सहसदलकंवल, त्रिकुटी, महासुन्न, भंवरगुफा से सतलोक । वह जो सावित्री का रहने वाला है वह साँसारिक ज्ञान को बताता है और उत्तम ज्ञान भी दे सकता है । जो केवल एक सावित्री का रहने वाला है वह आत्म ज्ञान नहीं दे सकता है । यह दुनियाँ की बातें, दुनियाबी प्रकृति, दुनियाँ की उन्नति, अर्थात प्रबृति मार्ग में निपुण होते हैं । उनकी वाणी जनसाधारण के लिये लाभदायक होती है । इसलिये सनातन धर्म क्या है ? मैं सनातन धर्म पर कहता हुआ चला आया हूं । जहां और बाते कही वहाँ यह है कि सावित्री के प्रकाश में रहने वाले की आज्ञा के आधीन रहो क्योंकि तुम्हारी बुद्धि काम नहीं कर सकती ।

शिवाजी के गुरु थे रामदास व एक और गुरु हुए जो इनके राजनैतिक गुरु थे । वह इनकी आज्ञा में रहता था । गृहस्थियो गुरु की आज्ञा में रहना चाहिये । मैं अपना जीवन बताता हूं । सन १९०५ में मैं दातादयाल (महर्षि शिव) के पास गया । घर में अनेकों मुसीबत आई । उनको लिख दीं । आजकल गुरु नाम देते हैं । यदि चिठ्ठियाँ लिखो तो वह कहते हैं कि हमको परमारथ के सिवाय कोई बात न लिखो । वह गुरु ही क्या हुआ जो जीवों के घरेलू झगड़ों को शान्ति नही दे सकता । मेरे मिलने वाले हैं सब सुखी हैं । कोई निर्धन नहीं । क्यों ? क्योंकि मैं उस सिद्धान्त या नियम की बताता हूँ । क्या सिद्धान्त ? वासना का । दूसरे की वासना को बदल देता हूं । बस ! जिसको जो कुछ मिलता है वह उसकी वासना का फल मिलता है । तुम्हारी वासना गलत होती हैं । तुम्हारे विचार तुम्हारे संकल्प शुद्ध नहीं होते । तुमको पता नहीं होता है । इसलिये तुम कष्ट उठाते

झते हो । यह गृहस्थ चलता है । सब आदमी आत्मज्ञान के अधिकारी नहीं हैं । अतः मैं वही सनातन धर्म कहूँगा । सनातन धर्म में वासना से काम शुरू होता है और वासना से ही संसार से रहित होता है वासना से ही संसार की उत्पत्ति होती है । इस वासना को ही काबू में करके हम इससे निवृति प्राप्त कर सकते हैं । इस ख्याल को भूल जाना कि मैं इसको सनातन धर्म कहता हूं, जो आजकल के सनातन धर्मी कहते हैं । सनातन सबसे प्राचीन, जब से आदि मनु पैदा हुआ । उस समय के धर्म का नाम है, सनातन धर्म ।

वासना से संसार उत्पन्न हुआ । यह वासना कहां से उत्पन्न होती है । प्रकाश से, ब्रह्मा से । जब इस स्थूल शरीर में प्रकाश आता है तब हमारे अन्तर Sensation (चेतनता पैदा होती है, जिसका नाम मन, बुद्धि, चित, अहंकार है । हमारा अपना रूप प्रकाश है । हम प्रकाशमय हैं, आत्म स्वरूप हैं, मगर हमारे ऊपर मन, बुद्धि, चित अहंकार जो माया का संगठित रूप है, के खोल चढ़े हुए हैं । जब इसके ऊपर खोल चढ़ जाता है हम प्रकाश रूपी आत्मा को भूल जाते हैं और जो कुछ हमारे अन्तर से निकलता है अर्थात धारें, इनको हम सत्य मान लेते हैं और इनमें फँस जाते हैं । जिस रास्ते में हम आये थे, उसी रास्ते में हमको वापिस जाना है । कहते हैं शब्द ब्रह्म, पारब्रह्म, शुद्धब्रह्म और सबल ब्रह्म से होते हुए यहाँ इस जन्म में आये हैं । योग वशिष्ठ में भी शुद्धब्रह्म, पारब्रह्म और शब्दब्रह्म का उल्लेख है । वाणी का अन्तर है । वही सनातन धर्म है । शब्दब्रह्म का नाम राधास्वामी मत वालों ने या संतों ने 'नाम' रख दिया है । कोई अन्तर संतों के मार्ग में और सनातन धर्म में नहीं है । यह अन्तर हम लोगों ने अपने आप बनाया है । कबीर प्रगटे । वह संस्कृत नहीं जानते थे । उन्होंने पंडितों से सवाल किया । पंडित

विद्वान थे, मगर साधन सम्पन्न नहीं थे। यह कबीर को उत्तर नहीं दे सके। इसीलिये कबीर ने पण्डितों का खण्डन कर दिया॥

मैं संस्कृत नहीं जानता। हिन्दी जानता हूँ। मैंने एक बार शिव पुस्तक पढ़ा। मेरी लड़की लाइब्रेरी से ले आई थी। सात दिन पढ़ता रहा। बड़ा मोटा ग्रन्थ था। वहाँ एक पण्डित गुजरानवाला से आया करते थे, गीता भवनों की स्थापना करते थे। वहाँ उसने गीता भवन की नीव रक्खी। वह मेरे स्टेशन पर आ गया। मैं बड़ा नियमाकूल रहा हूं। मैंने रिश्वत नहीं ली। मैं बड़ा सत्यवादी आदमी रहा हूँ। मैंने जीवन अपने लिये कभी झूँठ नहीं बोला। दूसरों के लिये अथवा नौकरों के लिये झूँठ बोला। लोग मेरा आदर करते थे। वह पण्डित आया। मैंने पूछा कि क्या तुमने शिव पुराण पढ़ा है। उसने कहा कि जी हाँ पढ़ा है। मैंने कहा धर्म से बताओ तुम ब्राह्मण हो, तुमको उस पर विश्वास आया है ? कहने लगा सच्ची बात तो यह है कि हम विश्वास करते है मगर मन में दुविधा रहती है। मैंने कहा मैं सच्चा मानता हूं।। मैंने कहा शिव पुराण वनस्पति का नाम है। मैं समझता हूं कि आप लोग मेरी बात समझ नहीं सकते। इसलिये मैं ऊँचा नहीं बोलता वरन मेरे दिमाग में अनुभव का भंडार लहराता है। समुद्र लहराता है। आर्य समाज वाले मुझे जो मर्जी हो कहें, मैं कहता हूँ कि वेदों ज्ञान कठिन हैं। यह कथाओं के रूप में हमको ज्ञान दिया हुआ है मगर इसके अधिकारी हैं कौन ? हिन्दू जाति एक ऐसी बलवान थी, जिसने धार्मिक स्वतंत्रता सब को दी मगर व्यावहारिक स्वतंत्रता नहीं दी। जहां किसी आदमी ने व्यवहार तोड़ा, उसको विरादरी से खारिज कर दिया। यह राधास्वामी मत वाले, दादू पंथी, नानक पन्थी, आर्य समाजी, मुसलमान,

जैन यह सब के सब हिन्दू जाति से निकले हैं। अब इस समय इस शिक्षा की आवश्यकता है कि हम स्वतन्त्र विचार वाले हो जाँय, ऊंची दृष्टि वाले हो जाँय, तो हमारी आपस में एकता हो जाय। दातादयाल (महर्षि शिव) ने पाँच हजार पुस्तकें लिखी हैं। सब में स्वतंत्र विचार हैं।

अब आज का सत्संग समाप्त हो रहा है। कल का विषय होगा 'यज्ञ'। यज्ञ क्या है? यज्ञ क्या है सनातन धर्म का। उस पर जो मेरा निज अनुभव होगा वह कहूंगा। आज तुमको मैंने सावित्री का पता दिया। जो व्यक्ति अपने अन्दर पैदा करता है, करता है, प्रकाश को देखता है ज्योति स्वरूप को देखता है, उसकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है। वह हर एक बात को सोचने के समझने के योग्य होता है। वह दूसरे को ठीक राय दे सकता है। मैं ठीक राय देता हूं। मेरा काम बनता है। दूसरों को लाभ होता है। मैं अपनी राय उस ज्योति के हिसाब से देता हूं। कई बार मैं ज्योति में चला जाता हूं और जिस वस्तु को को हाथ लगाता हूं वह चुम्बकीय (Magnetise) हो जाती है वह प्रसाद दिया हुआ दूसरों को कभी व्यर्थ जाता ही नहीं क्योंकि यह है सबल ब्रह्म। ज्योति स्वरूप जो है यह सबल ब्रह्म है। सबल ब्रह्म में जो ध्यान करता है जिसकी वृतियों की एकाग्रता के कारण से उसका मनोकमना पूरी होने का फल मिलता है। तब ही तो मैं कहता हूँ कि ब्राह्मण गायत्री का पाठ करता है वह यदि किसी से भिक्षा माँगता है तो मैं कहता हूं कि उसने गायत्री का पाठ नहीं किया। मैंने करके देखा है। प्रथम तो मैं इच्छा ही नहीं करता। यदि कोई स्वाभाविक होती है तो अपने आप पूरी होती है। स्वाभाविक इच्छा पूर्ण होती रहती है मगर मैं कोई इच्छा करता नहीं। मौज पर रहता हूं।

—००—

चतुर्थ सत्संग

उज्जैन कुम्भ ८—५—६८

यज्ञ

मैं ब्राह्मण जाति में पैदा हुआ। परमात्मा, राम, भगवान ब्रह्म, परमब्रह्म आदि को पूजता था। उस समय समझ नहीं थी मगर अपने संस्कारों से ख्याल था, भावना उठती थी कि मैं भगवान को मिलना चाहता हूं। सन १९०५ में इस भावना में २४ घण्टे के रोने के बाद एक दृश्य था जो मुझको दातादयाल महर्षि शिव्रतलाल जी महाराज के चरणों में ले गया। उन्होंने मुझे राधास्वामी मत की, कबीर मत की शिक्षा दी। चूँकि इनकी बाणियों में सब का खण्डन था, दिल उदास रहता था। उस समय प्रण किया था कि जो कुछ मेरी समझ में आयेगा मैं संसार को बता जाऊँगा।

मैं सनातन धर्मी हूं। पिछले तीन सत्संगों में मैंने बताया कि दुनियां कैसे पैदा होती है। यह जो कर्ता पुरुष है, इसका शरीर विराट है, उसका मन आव्याकृत है, उसका आत्मा हिरण्यगर्भ हैं। मैंने प्रमाण दे दिया कि उनके सकल्प से आदि मनु पैदा हुआ। फिर उसके संकल्प से या वासना से सब रचना हुई और हम सब जीव सृष्टि क्रम के अनुसार अपने कर्म के भोग भोगते हैं। मैं भी अपना कर्म भोगता हूं।

इस सनातन धर्म में जो कुछ है उसमें सबसे बड़ी चीज यज्ञ है आज इसी यज्ञ के विषय पर बोलूँगा। यज्ञ क्या है? हमारे ऋषि मुनि वेदमंत्रों द्वारा अग्नि उत्पन्न करते थे। फिर आहु-

तियां देते थे। वह क्यों ऐसा करते थे ? अपने मन की कामना पूर्ण करने के लिये, जैसे राजा दशरथ ने सन्तान के लिये यज्ञ किया। उसके सन्तान नहीं थी। तो श्रृङ्गी ऋषि आये और यज्ञ कराया। इस तरह से सनातन धर्म में प्राचीन काल में वैदिक समय में यज्ञ करने का रिवाज था। अब आजकल भी यहां यज्ञ हो रहा है। मैं सोचता हूं कि यह जो यज्ञ इस समय हैं यह पण्डितों ही की मीरास (बापौती) रह गई। जो संस्कृत जानते हैं या जो धनी आदमी हैं, जो पैसा खर्च कर सकते है वही ले गये (अर्थात वही यज्ञ कर सकते हैं।) जो बेचारे निर्धन हैं, संस्कृत नहीं जानते, वह यज्ञ कैसे करें ! क्या उनके लिये कोई इलाज है ? क्योंकि बिना यज्ञ के किसी को सफलता नहीं मिलती।

यज्ञ क्या है ? एक इच्छा को अपने मन के अन्तर में रखकर बाहर यज्ञ करते हैं। अन्तर का यज्ञ यह है कि जिस वस्तु की तुमको इच्छा हो उसका रूप बनाओ अपने अन्तर में। फिर बार-बार अपनी चाह को या अपनी इच्छा को उस रूप का ध्यान कर कर के माँगते रहो। मेरी समझ में यह यज्ञ आया है। वहां भी आहुति देते हैं। वह बहिरमुखता है। हमारे ऋषियों ने जब देखा कि धन की इच्छा है, उन्होंने धन का रूप लक्ष्मी बना दिया। लक्ष्मी का अपना रूप स्त्री का नहीं है। वह तो एक शक्ति है। मनुष्य ने उसके रूप को रूपाकार बनाने के लिये लक्ष्मी का रूप बना लिया। इसी तरह से और कामनाओं की पूर्ति को सरस्वती का रूप बना लिया, शिव का रूप बना लिया, विष्णु का रूप बना लिया। यह सूक्ष्म दिव्य शक्तियाँ हैं। तो इनका साकार रूप बनाते हैं। धन की चाह हो तो उन्होंने कहा लक्ष्मी का रूप बना लो। लोगों के अन्तर

में तो बनता नहीं, फिर बहिरमुखी मूर्ति को बना कर उसको पूजते हैं । अन्तर में यदि रूप बन जाय तो तुम्हारे मन की वृत्तियाँ इच्छा करती हुई बार—बार तुम उस मूर्ति को देखकर अपनी इच्छा को उस मूर्ति के सामने रक्खो । तुम्हारा काम बन जायगा । यह मैं क्यों कहता हूं । क्योंकि मैंने इष्ट रक्खा केवल अपने गुरु का या मालिक का, मगर कई आदमी मेरे पास आये । स्त्रियां भी आईं, जिनके पति रूठे हुये थे, घर से बाहर निकले हुये थे । उनको मैंने यह युक्ति बताई कि अपने पति की मूर्ति को यहाँ (मस्तक के अन्तर) बना—बनाकर प्रेम किया करो । वह आ जायगा या तुमको उसको पता लग जायगा । दस पाँच मामले ऐसे हुये जिसमें उन स्त्रियों की चिठिठयां आ गईं । बाद में उनके पति आ गये ।

यह है इस संसार में यज्ञ करने की विधि ! जो इच्छा तुम्हारी किसी की है, एक इष्ट बनाओ, जिससे तुम्हारी इच्छा पूर्ण होने का निश्चय हो । ऋषियों ने, हिन्दुओं ने जो बड़े बुद्धिमान थे उन्होंने लक्ष्मी दुर्गा, देवी, शक्ति के रूप बनाये यहाँ तक कि गुरु गोविन्दसिंह ने भी जब लड़ाई के मैदान में आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने भी भगवती आराधना की । यद्यपि यह गुरु मत के थे परन्तु लिखा है—प्रथम भगवती सुमरिये । अब उनके अनुयायी भगवती की बजाय भगौती कहते हैं । यह धार्मिक पक्षपात है, द्वेष है, घृणा है । तो यज्ञ करने की एक विधि तो यह है । एक यज्ञ होता है हिन्दू शास्त्रों में ।

उसकी सुगम विधि संत मार्ग में क्या है ? तुम जो कुछ चाहते हो अपने इष्ट से, अपने अन्तर में रूप बनाकर उससे माँगा करो इसका अनुभव मुझे कैसे हुआ ? जो लोग मेरे रूप में उसे मानते हैं और मेरा रूप अन्तर में बना लेते हैं, उनके

अन्तर उनको जवाब मिल जाता है। यश (Credi) वह लोग मुझे देते हैं। करनी उनका अपनी है। न मैं कहीं जाता हूं, न मुझे पता है।

यह प्रवृति मार्ग दुनियाँ की इच्छा चाहने के लिये है और यही प्रवृति मार्ग उसको है जो मालिक को मिलना चाहता है। यदि वह पुकार करेगा तो उसका भी परिणाम वही होगा, जैसा मेरा हुआ। मैं उससे पुकार कर कहा करता था—हे भगवान ! मुझे मिल जा ! अपना रूप दिखा जा ! जब मैं २४ घण्टे लगातार रोया, तो मैं जहाँ गया, जिस जगह कुदरत ने मुझे पहुँचाया, वहाँ से मेरा काम पूरा हो गया। तुम गृहस्थी हो। बजाय इसके कि साधुओं संतों के पास जाओ, मंदिरों में या गुरुद्वारों में जाओ, क्यों नहीं अन्तर में बैठते ! तुमको जो कुछ मिलना है अपने ही अन्तर से मिलना है। बाहरी गुरु ने तुमको ज्ञान देना है, भेद देना है। यह तो एक बात है।

दूसरी बात ! सनातन धर्म कहता है कि यज्ञ का पुण्य होता है। यज्ञ जब करते हैं, भोग देते हैं, फिह आहुति डालते हैं। उस से एक लाभ तो यह था कि उस समत में हमारा वायुमण्डल शुद्ध होता था। अब न तो लोगों के पास इतना घी है न सामिग्री है। अब कई दूसरी दवाइयाँ निकाली गई है। वह रोग को दूर करती हैं। फिर उस यज्ञ के लिये तुमको पण्डितों को, विद्वानों की आवश्यकता पड़ेगी। इतने विद्वान कहाँ से लाओगे ? उनके लिये तुमको खच करना पड़ेगा। फिर क्या करोगे ? मैं वक्त गुरु की हैसियत में कह रहा हूं। सुनो ! सनातन धर्म पूर्ण है। इसमें हर एक विचार धारा वाले के लिये खुराक है। हिन्दी में पुराण है। संस्कृत तो मैं जानता नहीं। वहाँ एक कथा है--

कहीं एक ब्राह्मण था। उसने बहुत यज्ञ किये हुये थे।

कैसे यज्ञ ? वेद के मन्त्रों द्वारा, वेद मंत्र पढ़कर आहुतियाँ देकर ऐसे यज्ञ उसने किये हुये थे। समय आया। वह निर्धन हो गया। उसकी स्त्री ने कहा---तुमने इतने यज्ञ किये हुये हैं। तुम किसी राजा के पास चले जाओ। एक दो यज्ञों का फल उसको संकल्प करके दे दो। उससे कुछ धन ले आओ। पहिले तो वह मानता नहीं था। फिर घर से चल दिया। उसकी स्त्री ने पांच रोटियाँ उसको बाँध दीं। वह लेकर चल पड़ा। कहीं दोपहर हुआ। किसी कुऐ पर स्नान किया पाठ पूजा की। रोटी खाने खाने लगा। एक कुतिया पाँच बच्चों सहित पूँछ हिलाती हुई आ गई। उसने एक रोटी फेंक दी। उससे उसकी भूख नहीं गई उसने फिर पूँछ हिलाई। उसने दूसरी रोटी फेंकी, तीसरी फेंकी, चौथी फेंकी। उसकी भूख फिर भी नहीं गई। उसने पाँचवीं भी फेंक दी। उसने सोचा आज नहीं सही। आज नहीं खानी। चल पड़ा। वह सायंकाल को किसी दूसरे राजा के दरवार में पहुंच गया। राजा के पास जाकर उसने पुकार की। जिस तरह आज कल गेरुये कपड़े का मान है उसी तरह उस समय में पण्डितों का तिलक धारियों का मान होता था। जब यहाँ हिन्दुओं का राज्य था, ब्राह्मणों की कमान चढ़ी हुई थी। जब मुसलमानों का राज था, मौलवी और काजियों की कमान चढ़ी हुई थी। जब सनातनितों का समय आया, उनकी कमान चढ़ गई। जब बौद्धों का राज हुआ तब भिक्षुओं की कमान चढ़ गई। यह संसार ऐसा ही चलता है। उस समय ब्राह्मणों की कमान चढ़ी हुई थी। राजा ने कहा ब्राह्मण देवता ! क्या चाहिये ? उसने कहा—महाराज ! मैं निर्धन हो गया हूँ। मैंने बहुत से यज्ञ किये हैं। एक दो संकल्प किये देता हूं। मुझे कुछ धन दे दो। उस राजा का अपना एक गुरु था। कुल गुरु। उसने उसकी ओर देखा। उसने कहा पण्डित को कहो कल आये। वह

कुछ अन्तरदृष्टि रखता था । दूसरे दिन पण्डित आया । उस राजा के गुरु ने कहा—पण्डित जी ! जो यज्ञ तुमने परसों किया किया है उसका फल दे दो । वह कहता है मैंने परसों कोई यज्ञ किया है उस जैसा कोई और यज्ञ किसी ने आज तक नहीं किया । पण्डित ने कहा—मैंने कोई यज्ञ परसों नहीं किया क्यों कि वह तो यज्ञ यह समझता था कि जो वेद मंत्रों के द्वारा किया जाता है । उसने कहा—परसों तुमने कुतिया को रोटियाँ डाली है । उसका फल दे दो । उसको चेत आया । उसने कहा मैं नहीं देता ।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे सनातन धर्म में उन आदमियों के लिये जो विद्वान नहीं हैं, पण्डित नहीं है, जिनके पास धन नहीं है, जो यह क्रिया करके तथा मंत्र पढ़कर के यज्ञ कर सकें । उनके लिये खुला दरवाजा है यज्ञ करने के लिये ! जितना चाहो यज्ञ करो । उन लोगों के लिये जो यह पण्डितों का यज्ञ नहीं कर सकते, वेद मंत्र नही जानते, पास में धन नहीं है, उन लोगों के सनातन धर्म बताता है कि कैसे यज्ञ करो : वह यज्ञ जिसका कि दूसरे यज्ञ मुकाबला नही कर सकते । तुम गृहस्थी हो, गरीब हो । क्या एक हजार रुपया दान देने वाला ही दानी कहलाता है ? नहीं मैं कहता हूं एक पैसा देने वाला भी दानी कहलाता है । जिसके पास ही चार पैसे हैं, कोई दुखी, भिखारी दुखिया उसके पास गया । उसने अपने पेट को काटा । चारों पैसे दान कर दिये । उस दान का वही फल होगा जो बिरला सेठ को लाख रुपया दान करने का फल है बिरला को शायद लाख रुपया दान करने का फल न मिले जितना एक गरीब आदमी को जिसकी जेब में केवल चार ही आना हैं और वही शाम के लिये रोटी खाने के लिये है और किसी दुखिया आदमी को चार आने दे देता है और वही शाम

के लिये रोटी खाने के लिये है और किसी दुखिया आदमी को वह चार आने दे देता है और आप भूखा रहता है। वह बिरला के लाख रुपये के दान से हजारों दर्जा बढ़कर है। तुम्हारे लिये सनातन धर्म ने रास्ता खोला हुआ है। तुम महादानी से दानो बन सकते हो। तुम दान उसको समझते हो जो दस हजार रुपया देता है। वह दानी है। मैं कहता हूं वह दानी नहीं है। वह अपना यश, मान या बड़प्पन चाहता है।

जो आदमी किसी दुखी आदमी की सहायता करता है, किसी पशु की सहायता करता है, उसकी मनोकामनायें पूर्ण होनी हैं। यह मैं क्यों कहता हूँ? यह जो कुछ मैं कहता हूं, मेरा अनुभव है। आज आठ दस वर्ष पहले की घटना है। एक वैद्य-राज मेरे पास आया। कहा, पण्डित जी! बारह साल हुए शादी किये हुए। संतान नहीं है। मैंने पूछा क्या काम करते हो कहा गांव में काम करता हूं। वहाँ गरीब लोग हैं। मैंने कहा चूहड़े चमार जो नीच जाति के आदमी हैं जो गरीब हैं यदि किसी समय रात को तुम्हारे पास बुलाने आयें तो बिल्कुल हिचकिचाहट नहीं करना। खुशी से जाना। उनसे पैसे नहीं लेना। उनका इलाज तुम ,मुफ्त किया करो सच्चे हृदय से। तुम्हारे लड़का हो जायगा। उसने ऐसा ही किया। सवा वर्ष के बाद जब मैं सत्संग करा रहा था वह वैद्यराज आया। मैं तो भूल गया था। उसने लड़का मेरी गोद में डाल दिया। मैंने कहा तू कौन है? कहा जी मैं वैद्यराज हूं। तब मुझको याद आया। मैंने पूछा क्या लड़का हो गया? कहा, हो गया। नाम रख दीजिये। मैंने अपना ही नाम रख दिया फकीर। यह प्रमाण मैं दे रहा हूँ लोगों को कि सनातन धर्म एक विशाल सम्पति है। सनातन धर्म को मैं मानव धर्म कहता हूं। क्यों? क्योंकि सनातन धर्म अब एक जाति विशेष के लिये रह गया

है। यह विश्व का धर्म (Universal Religion) है, क्योंकि यह वासना है (वासना पर आधारित है)। हर एक आदमी को अपनी मनोकामना पूरी करने की आवश्यकता है। ये यज्ञ जो मैंने कहे हैं मुसलमान भी कर सकते हैं, चमार भी, राधास्वामी भी, बौद्ध भी, जैन भी कर सकते हैं। यह सबके हिस्से में आता है। वह जो वेदों का यज्ञ है वह तो केवल ब्राह्मण जाति के हिस्से में आया है।

तो यह संसार है वासना का, इच्छा का। मैं आज दिन तक प्रवृति मार्ग पर बोलता आ रहा हूं। तुम दुनियाँदार हो, गृहस्थी हो, तुमको दुनियाँ (के पदार्थ) चाहिये। तुमको मैंने पिछले तीन सत्संगों में और आज भी प्रवृति मार्ग के विषय पर कहा।

अब एक यज्ञ और है जो पता नहीं है कि सच कहते हैं या झूँठ कहते हैं। कही बकरा (अजामेघ) मार कर किया जाता है, कहीं (अश्वमेघ) घोड़े को मार करके किया जाता है। कहीं कहते है बैल (गौ मेघ) को मार कर किया जाता है यद्यपि हिन्दू नहीं मानते मगर विनोवा भावे ने संस्कृत के श्लोकों से गौ का अर्थात बछड़े का यज्ञ सिद्ध किया। हिन्दू जाति को बुरा लगा। उन्होंने कहा तुम अपने लेख को बदल को। उसने कहा कि यह अमुक पुस्तक में लिखा हुआ है, मैं नहीं बदलता। उसने बदला नहीं। वह जो बकरा, घोड़ा और बैल हैं वह न बकरा है न घोड़ा है न बैल है। वाणी का जाल है। हिन्दू जाति न बकरा मारती है न घोड़ा न बैल। यह तुम्हारे मन के तीन रूप हैं। तमोगुणी मन, रजोगुणी मन और सतोगुणी। जब तक मनुष्य अपने तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी मन को नहीं मारता, तब तक वह मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि

जब तुम्हारा मन साथ है यह मन इच्छा करता रहता हैं। मन का काम है वासना करना। जितना प्रवृति मार्ग है यह सब तुम्हारे मन का काम है। वासना को लेकर ही चलते है। मन प्रवृति मार्ग में चलता है। यदि कोई अपने असली घर जाना चाहता है तो जब तक यह तीन यज्ञ नहीं करता अर्थात बकरा, अश्वमेध और बैल अर्थात तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी मन को नाश नहीं करेगा, इनकी आहुति नही देगा, इनको अग्नि में फूंक नहीं देगा, तब तक वह जो हमारे अन्दर वस्तु है, जो हमारे शरीर में रहती है मन में फँसी हुई, शरीर में फँसी रहती है, वह इससे निकल नहीं सकती। उसके लिये सन्तों ने दया करके सुमिरन, ध्यान और भजन बताया हुआ है। यह अजपा जाप जो तुम करते हो किसी नाम से करो। चाहे राम नाम के द्वारा अजपा जाप करो, चाहे अल्लाह नाम से करो, चाहे वाह गुरू, गायत्री मन्त्र, पांच नाम, या राधास्वामी नाम से करो, मैं इन झगडों में नहीं पड़ता। अजपा जाप करने से जो तुम्हारा तमोगुणी मन है समाप्त हो सकता है। कैसे ? तमोगुण है क्या ? जिस आदमी का मन हमेशा ही अपने शरीर के स्वाद, खान पान कीं ओर लगा रहता है, सिवाय अपने शरीर के उस को और कुछ बुद्धि नहीं है, ऐसे आदमी को तमोगुणी कहते हैं। जिसका मन चंचल है, तरह तरह के संकल्प विकल्प उठाता है, बुद्धि दौड़ाता है, घोड़े की तरह दौड़ता है उसको रजोगुणी मन कहते हैं। जो सात्विक मन है वह अपने अन्तर विवेक रखता है श्रेष्ठ बुद्धि रखता है। वह सात्विक मन है। जो सुमिरन करते रहने से बशर्ते कि किसी पूर्ण गुरु की संगत मिली हुई है तो इस तमोगुणी मन पर काबू पा जाओगे। अजपा जाप करो गुरु स्वरूप का ध्यान करो या राम का करो, कृष्ण का करो मगर एक का करो। जब वह ध्यान घना हो जायगा, तुम्हारा चंचल

मन, जो छलागें मारने वाला है, वह समाप्त हो जायगा। चंचलता जाती रहेगी। शब्द जो अनहद वाणी है उसको सुनते सुनते तुम्हारा सतोगुण का जो अंश है तुम्हारे अन्तर जो विवेक और अनुभव को पैदा करता है और तुमको तुम्हारे अन्तर में आनन्द देता है, वह तुम्हारे वश में आ जायगा। प्राचीन काल में यह अश्वमेघ यज्ञ राजा लोग करते थे। इसका क्या अभिप्राय था? घोड़ा छोड़ देते थे। जिसने उस घोड़े को पकड़ लिया उसके साथ युद्ध किया। उसको हरा कर के सबका मालिक बन गया। तो जिसने अपने मन को मार लिया, रजोगुणी मन जिसका वश में आ गया—

मन जीते जग जीत।

उसने मन को जीत लिया। मन को कब जीता जायगा? सुमिरन ध्यान भजन से। इसलिये कलियुग में यह सुमिरन, ध्यान और भजन हिन्दुओं में सनातन धर्म में मौजूद है। उसके रूप अलग अलग हैं। लोगों को इसका पता नहीं है। तुमको राम नाम का जाप बताया जाता है। अभी वहाँ लाउडस्पीकर पर जाप कर रहे थे। इस जाप से कोई लाभ नहीं होता, जितना अपने मन के साथ बिना जिभ्या हिलाये हुए करने से लाभ होता है। इस नाम के जाप जो जिभ्या से हम गाते हैं, या बाजे पर गाते हैं, इससे एक रागानन्द मिलता है। राग एक विषय हो जाता है। असली जाप जो है वह है अजपा जाप। इसको कहते हैं सुमिरन।

मैं आत्मा से पूछता हूं कि फकीर! तू सनातन धर्म से विमुख तो नहीं हो गया, राधास्वामी मत में आने से या कबीर मत में आने से। मेरी आत्मा मुझे कहती है मैं विमुख नहीं हुआ

ने लिखे हुए हैं वह मैं करता हूँ। जो जरूरतमन्द हैं उनको देता रहता हूं जो कुछ मेरे पास है। किसी के पास धन है वह धन देता है दान देने का अभिप्राय क्या है ? यही कि दूसरे के दुख को निवारण करो। एक आदमी भूखा है। उसको रोटी दो। यह भीं दान है। प्यासा है उसको पानी दे दो। यह भी दान है तुम देखो ! जब गर्मी आती है लोग प्याऊ लगा देते है। अब यह लंगर लगे हुए हैं कि नहीं लगे हुए ! यह सभ्यता है। यही सनातन धर्म है। भूखे को रोटी, प्यासे को पानो, बीमार को दवा दो। अशान्त आदमी को प्रेम से मीठा बोल कर उसके मन को हल्का कर देना बड़ा दान है। दान से अभिप्राय यह है कि दूसरे के मन को जो दुखित दशा है उसको शान्ति मिल जाय।

कोई मानसिक रूप से दुखी है। सन्त महात्मा बड़े दानी होते है। ज्ञान दान जैसा दुनियां में कोई नहीं। तो मीठा बोल कर किसी के साथ या किसी के मन का जो दुखी है, उसको शान्ति कर देना, यह भी एक महा दान है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर यदि में सन्तों के मार्ग में आया तो मैं अपने आपको पतित नहीं समझता हूँ, किन्तु दातादयाल (महर्षि शिव) अपने सतगुरु का अहसान मानता हूँ कि इस पवित्र विभूति के कारण मुझको अपने असली मत का पता लग गया कि सनातन धर्म या मानव धर्म वास्तव में है क्या ?

तो मानव धर्म क्या हुआ ? मानव जाति वासना के आधीन इस संसार में आई। असली वासना तो है उस कर्ता पुरुष की जिसने इस सृष्टि की रचना की है और हम सब उसकी वासना के आधीन काम करते हैं। मगर हमारे कर्म अलग अलग हो गये। मेरे कर्म और है, तुम्हारे और हैं, मगर है तो एक कर्ता

का । इस संसार में हम रहते हैं। जैसी तुम वासना रखोगे वैसा तुम्हारा जीवन बनेगा । वासना को तीव्र करने के लिये कि तुम्हारा काम शीघ्र हो जाय, यज्ञ करने की आवश्यकता है। यज्ञ की विधि मैंने तुम को बता दी कि जो इच्छा तुम्हारे अन्तर है अपने इष्ट देव से, अपने इष्ट देव के रूप की साकार मूर्ति खोपड़ी में रखकर इस स्थान पर (दोनों भौओं के बीच में) माँगा करो। जहां तुम्हारे अन्तर तड़प पैदा हुई, तुम्हारे अन्तर उसको प्राप्त करने की युक्ति भी सूझेगी। दूसरे भी सहायता करने वाले तुम्हारे साथ आ जायेंगे और तुम्हारी सहायता हो जायेगी । यदि तुम अपने घर जाना चाहते हो, दुनियाँ से तंग आगये हो, दुनियां देखती है, ठोकरें खा ली, बैराग हो गया है और समझते हो कि यह दुनियाँ तो नाशवान है, एक दिन रहनी नहीं है, तो फिर क्या करना है ? फिर सुमिरन, ध्यान और भजन करो । मैंने संक्षेप में तुमको सनातन धर्म, सच्चे मानव धर्म का सार बता दिया।

तुम लोगों ने मुझे यहां बुलाया। मैं अफसोस करता हूं क्यों कि यहाँ के मेरे आदमी ग़रीब हैं। यहाँ इनको खर्च अधिक करना पड़ता है। मैं दामोदर आदि को कसम देता हूँ कि उनको यहाँ के प्रबन्ध स्वयं करने में रुपये कमी महसूस हो तो मेरा बोरिया बिस्तर बाँध दें। मैं तुमको लूटने नहीं आता बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि सनातन धर्म में, इस्लाम में, यहूदियों में, इस सिद्धान्त को कहीं अन्तर नहीं है। उनके उन्नति करने के मार्ग भिन्न भिन्न हैं ।किसी ने सरस्वती को यहाँ (मस्तक के बीच) बिठा कर सम्पत्ति मांग ली, किसी ने बाबा फकीर के आगे दुआ माँगी, किसी ने जीसस क्राइस्ट (ईसा मसीह) को यहां बिठाकर प्रार्थना की, किसी ने मुहम्मद साहब को यहाँ रखकर प्रार्थना की । न कोई मुहम्मद आता है और न ईसा मसीह

आता है, न बाबा फकीर आता है। ऐ इन्सान ! वह एक शक्ति है जिसका कोई नाम नहीं, कोई रूप नहीं। जिसरूप में तू उसको मानता है, जिस नाम में तू उसको पुकारता है, उसी नाम से तेरी सहायता होती है।

नहीं रूप तेरे हैं, सब रूप तेरे।
तेरी सब ही है प्रजा, अरु भूप तेरे।।

हमारे जितने भी सम्प्रदायों के झगड़े हैं, जितना हमारा द्वेष है, जितने हमारे भेद भाव हैं, वह हमारे अज्ञान के कारण है। हमारी अनसमझी से है। हम गुरुओं ने, हम महन्तों ने तुम लोगों की आँखों में मिट्टी डाली हुई है आज मैं रोटी नही खा सका। बाहर गया था। कोई सज्जन मुझे मिले। अच्छी समझ बूझ वाले हैं। उन्होंने एक घटना सुनाई। क्या कहूं निन्दा नहीं करता मगर मैं दुखी होता हूं। कोई पन्थ है। मैं नाम नहीं लेना चाहता। वहाँ के महन्तों का यह व्यवहार रहा कि अपना बड़प्पन स्थित रखने के लिये कि महन्त जी बड़े योग्य, बड़ी करनी वाले हैं, अपने किसी प्रेमी चेले को अपना मान रखने के लिये पान देते हैं कि आज से १५ दिन के बाद या १० दिन के बाद तुमको तुम्हारा सतगुरु ले जायगा। उसकी जुबानी सुना है। पता नहीं उसने झूँठ बोला कि सच बोला मगर चूँकि वह उस मार्ग का आदमी है इसलिये मैं सच समझता हूं। वह पान में ऐसा विष दे देते हैं कि जिसका प्रभाव दस दिन के बाद या पन्द्रह दिन के बाद होता है जैसा उसने बताया कि तुमको तुम्हारा सतगुरु ले जायगा, और वह मर जाता हैं। और गुरु महाराज की प्रसंशा होती है कि महाराज बड़े अन्तरयामी है। धिक्कार है उस गुरुइज्म को ! यह ऐसे सम्प्रदाय वाले क्यों नहीं नष्ट हो जाते ?

भारतवासियो ! यह तुम्हारे सम्प्रदायों का हाल है। मैं

तुमको चेताने के लिये आया हूं। गुरु नाम है ज्ञान का, गुरु नाम है समझ का, विवेक का दुनियाँ ने गुरु को मनुष्य समझा। परिणाम उसका यह निकला कि मनुष्य गुरु नहीं शैतान बना है। दुनियाँ भूली हुई है। मैं यह काम दर्देदिल रखकर करता हूं। इस तरह के पाखड के जाल इन महात्माओं ने बनाये हुये हैं। केवल अपने झूठे नाम के लिये, इस पैसे के लिये, गद्दियों के लिये नाम निशान के लिये। मैंने तुमको कहा कि मैं गृहस्थियों के लिये आया हूं। मैं दातादयाल (महर्षि शिव) को धन्यवाद देता हूं कि उस पवित्र विभूति ने मेरे अज्ञान को मिटाया। मैं भ्रम में था। उन्होंने मुझे गुरु पदवी दी थी। यह कहा था कि तुझको सतगुरु के दर्शन सत्संगियों के रूप में होंगे, क्योंकि मैं बड़ा तुच्छ बुद्धि वाला था। बाणी और पुस्तकों के जाल में बुरी तरह फँसा हुआ था। मैंने जब ऊपर कही घटना सुनी मेरी टाँगे काँपती थी। खाना खाने लगा। खाना अन्दर नहीं जाता था। मैं कहना नहीं चाहता था मगर मुझसे रहा नहीं गया। गुरु किसे कहते हैं? तुम तो फकीरचन्द को गुरु मानते हो। मूर्खों! यह देह कभी गुरु नहीं। हम साधु महात्माओं और हम धार्मिक जगत वाले आदमियों ने तुम्हारी आंखों में मिट्टी डाली हुई है। दातादयाल (महर्षि शिव) का शब्द है। वह गुरु का रूप बताते हैं :—

गुरु रूप न समझे कोय, भरम में पड़े अज्ञानी ॥
गुरु को मानष जानकर, भक्ति का करते व्यवहार ॥
सो प्रानी अति मूढ़ है, कैसे जांय भव पार ॥
देह के बने अभिमानी ॥

कई आदमी इसका अर्थ उल्टा लेते हैं। वह कहते हैं भई! मान लो वह रब (ईश्वर) मानने लग जाते हैं वह कहते हैं,

मौला आप बन्दा बन आया। यह सब भ्रम है और अज्ञान है। कोई इस भ्रम को मिटाता नहीं है। मैं इसीलिये संसार में आया हूं कि अपने जैसे दीवानों को कहजाऊँ कि मेरे जीवन की रिसर्च मुझे क्या सिद्ध करती है। मैं जो कहता हूं वह वाणी गुरु है न कि देह गुरु है। बात को कोई पकड़ता नहीं हूं। देह को पकड़े हुये हैं।

गुरु को मानष जानकर, सेत प्रशादी लेय ॥
सो तो पशु समान हैं, संशय में अटके ॥
गुरु तत्व न जानी ॥

यह दुनिताँ बावली बनी हुई है। गुरु का झूठा खाने की कोशिश करती है। पाँव धोकर पीने की कोशिश करती है। मैंने गुरुमत के कई गुरुओं को देखा। कोई कैंसर से मरे। कोई टी०बी० से मरे। इन पाँवों की मिटटी को तुम धोकर पीते हो। कहां तुम्हारी बुद्धि चली गई! मेरे मुँह में सौ बीमारियाँ हैं। तुमको झूठा देता हूं खाने को। क्या बीमार न होगे? अज्ञान की भक्ति का परिणाम आज भी खराब है। हाँ, जहाँ मीराबाई जैसा विश्वास करने वाला कोई चेला अगर हो तो वह अपने प्रेम और श्रद्धापूर्ण संकल्प से विष को भी अमृत बना सकता है। मगर यह अपवाद (मुस्तनियात) है। विशेष विशेष व्यक्ति ऐसे होते है।

गुरु को मानष जान कर, मानष करें विचार।
सो नर मूढ़ गँवार हैं, भूल रहे संसार ॥
मोह के फाँस फँसानी ॥

जब किसी महापुरुष का या गुरु का दिन आता है, नाम लेते हैं गुरु का। अमुक सतगुरु अमुक वर्ष के अमुक महीने में अमुक माई के घर अमुक गांव में जन्मा। यह

यह उसने काम किये। अमुक दिन चोला छोड़ गया। मगर गुरु तो मरता नहीं हैं। गुरु अखंड मण्डलाकार है कहा है :—

गुरु मध्य आदि अनन्त, अदभुत अगम अगोचरम्।
विभु विरज पार अपार निरगुन, सगुन सत्य विशेशरम्॥
जिहि मति लखे नहिं गति लखे, सो शुद्ध तत्व विचार है॥

यह दातादयाल का शब्द है। मैं उस पवित्र विभूति का शिष्य हूँ जिसने मेरे अज्ञान का नाश किया और हुक्म दिया कि जीवों का कल्याण कर जा :—

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।
दुखी जीव को अंग लगाकर, ले जा गुरु के देसा॥
तीन ताप से जीव दुखी हैं, निबल अबल अज्ञानी।
तेरा रूप दया का भाई, नाम दान दे दानी॥

मैंने जीवन में वैसा नाम नहीं दिया जैसे तुम लोग दूसरे गुरुओं से नाम (दीक्षा) लेते हो। मेरा वचन ही नाम है। मेरे जिम्मे डयूटी है। इसलिये यह काम करता हूँ।

गुरु को मानष जानकर, भेड़ की चलते चाल।
वह बन्धन को क्यों तजें, व्यापै माया काल॥
पड़े योनि की खानी॥

तुमने मेरा क्या देखा! दस आदमियों ने या दामोदरदास या दूसरों ने प्रसिद्ध कर दिया कि बाबा फकीर बड़ा सन्त है मगर तुमको क्या पता कि मैं कौन हूं। मैं चोर हूं या ठग हूं। तुमको क्या पता कि दूसरे महात्मा जो गद्दियों पर बैठे हैं उनके अन्तर में क्या है? दुनियां भूल भ्रम में फँसी है। यह दुनियाँ प्रोपेगन्डा करने वाली है। १०—१५ चेले बना लिये। यह प्रोपे-गन्डा करते हैं। बाबा फकीर बड़ी करनी वाला है। लोगों के

क्या पता कौन गुरु है कौन गुरु नहीं हैं। तो दातादयाल कहते हैं :—

गुरु को मानष जानकर, चलते भेड़ की चाल।
वह बन्धन को क्यों तजें, व्यापै माया काल ॥
पड़े योनि की खानी ॥
गुरु नाम आदर्श का, गुरु है मन का इष्ट।
इष्ट आदर्श को ना लखे, समझो उसे कनिष्ट ॥

गुरु आइडियल है, तुम्हारा इष्ट है, तुम्हारा विश्वास है। वह इष्ट जब रहेगा तुम्हारे मन के अन्दर रहेगा। बाहर नहीं रहेगा। गुरु वह है—

घर में घर दिखलाय दे, सो सतगुरु पुरुष सुजान ॥

जो वाह्य गुरु तुमको असली गुरु का रूप तुम्हारे अन्तर में दिखादे कि असलियत यह नहीं है यह है, उस पुरुष का नाम गुरु है। वह अपनी पूजा नहीं करवाता मगर आजकल क्या है ! स्वामी जी की वाणी है :—

तुम साध कहावत कैसे।
माँग माँग धन जोड़त पैसे ॥

आज कल का गुरुइज्म तो पैसा बटोरना है। राधास्वामी मत में मैं कहा करता हूं आर० एस० (R. S.) लिखते हैं। आर० एस० रुपया (Rupees) को भी कहते है। आज कल यह राधास्वामी मत है (Rupees) रुपया लाओ। रुपया बस ! दुनियाँ है बावली ! मैंने कल भी यह शब्द आपको सुनाया था।

हम आये आये आये हैं।
तुमको दुखी देख आँखों से दिल में दया समाई।
दया भाव ले प्रगटे जग में, दया यहां ले आई ॥